STREE AUR ADHYATMA

HINDI SPIRITUAL BOOK (EASY FOR READ)

स्वयंसिद्धा तेजस्विनी फाउंडेशन

अध्यात्म और स्त्री

स्त्री स्वयं प्रकृतिस्वरूपा है। वह माँ है, जननी है, स्वयं जगदम्बा है, तो शक्ति भी है। अध्यात्म और स्त्री का गहरा संबंध भी है। परमात्मा और पराशक्ति जो सदैव सृष्टि के नियंता हैं और हर जीवों में तो क्या कहें, वह निरन्तर सम्पूर्ण सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है।

यह सम्पूर्ण सृष्टि ही परमात्ममय है। स्त्री भी इसका एक अविभाज्य अंग है। स्त्री ना हो तो वंश ना चले। स्त्री की भूमिका संसार से लेकर परमार्थ तक बड़ी महत्वपूर्ण है और उनका योगदान भी रहा है। जो प्रकृति सदैव हमें उल्लास, आनंद, आल्हाद प्रदान करती है वह भी तो एक शक्ति ही है। स्त्री इन्हीं शक्तिस्वरूप, आल्हादनीय प्रकृति देवी का इस धरती पर नेतृत्व करती है। वह सहनशील भी है।

अब बात करते हैं कि स्त्री का और अध्यात्म का गहरा संबंध कैसे है? और क्या स्त्री को और भी कहीं अपने विचारों से लेकर अपने सिद्धांतों को कहीं परिवर्तित करने की आवश्यकता है ? हाँ, अवश्य है ! कैसे ?

हम सभी इस सत्य को जानते हैं कि एक गृहस्थ जीवन में भी स्त्री महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पुरूष की सफलता की नींव स्त्री का स्वभाव एवं व्यवहार व सहनशीलता ही है।

जिस घर में नारी का सम्मान व अध्यात्म का आदरसहित पूजन होता है, वह घर स्वर्ग समान ही नहीं बल्कि तीर्थ ही है और जिस नारी (स्त्री) में अध्यात्म की गंगा बहती हो ऐसी नारी गृहस्थ का, घर का, संसार का एवं समाज का मंगल करने की क्षमता रखती है। वह तो फिर धरती पर स्वयं पूजित मंगलकारिणी मातृदेवी है।

किन्तु आज समाज के हालात कुछ अलग अंदाज बताते हैं, कहीं स्त्री पर अत्याचार तो कहीं स्त्रीत्व के अतिरेक से पुरूषों पर अत्याचार यह घटनायें सामान्य सी हो चुकी हैं। इसका कारण भी बहुत सूक्ष्म है, जो स्थूल बुद्धि से परे है।

कभी ऐसा भी समय था कि पुरूषों द्वारा स्त्री पर अन्याय, अत्याचार हुआ करता था। आज के समय में भी हो रहा है किन्तु आज स्त्री सबल भी तो बन चुकी है उसके बावजूद भी स्त्री पर अत्याचार या उसका शोषण होना यह आश्चर्यजनक बात है। अगर पुरूष सबल है तो उसके ऊपर कोई स्त्री अन्याय, शोषण नहीं कर सकती इतनी आसानी से।

आज ऐसी दुर्घटनाएँ क्यों ? क्या समाज का आदर्श ऐसे स्थापित होगा ?

शास्त्र भी कहते हैं कि एक गृहस्थरूपी रथ के दो पहिये हैं स्त्री-पुरूष। अगर एक पहिया भी डावाँडोल हो गया तो रथ रास्ते पर ही गिर जायेगा। उसी प्रकार पुरूष अथवा स्त्री इन दोनों में से एक ने भी अपने कर्तव्यपालन में कमी दिखाई तो गृहस्थीरूपी रथ तो गिर जायेगा ना भैया ! वहाँ फिर अफसोस, दुःख, पीड़ा, चिंता, शोक, रूदनरूपी दुर्घटनायें आकर खड़ी हो जाती हैं। क्या इसमें समाज का हित है ?

आज स्त्री को केवल भोग्या ही माना जाता है क्यों ? क्योंकि वह सदैव पुरूष के आधीन रहने के स्वभाव वाली बन चुकी है। और जहाँ वह स्वतंत्र हो चुकी है वहाँ पुरूष को

पैरों तले रौंदती चली जा रही है। ऐसा क्यों ? क्या दोनों समानता के आधार पर नहीं चल सकते ?

जो नारी उच्च शिक्षा प्राप्त हो, स्वतंत्र हो, उच्च गुणों की धनी हो उसे क्या यह जरूरी है कि वह पुरूषों को न्यून समझे ? अथवा अपने गृहस्थ धर्म का त्याग करके स्वछंद होकर विचरे ?

अथवा कोई पुरूष उच्च पद पर आसीन हो और नारी सहज, सरल, कम शिक्षित हो तो क्या वह पुरूष अपनी स्त्री का निरादर करे और उसे तुच्छ समझे ?

नहीं ! बस, यही कमी है !

इन दोनों क्रम को देखें तो स्पष्ट है, कि पुरुष एवं नारी इन दोनों को समानता की आधारशिला पर अपना गृहस्थीरूपी मंदिर स्थापित करना चाहिए।

आध्यात्मिकता से नारी का गहरा सम्बन्ध है। पहले के समय में स्त्री सन्यास के मार्ग पर नहीं चलती थी। वह अपने गृहस्थधर्म का पालन करते हुए, पति को परमेश्वर मानते हुए अपना आत्मकल्याण करती थी। यही उचित भी है। किन्तु जो भी स्त्री ब्रह्मज्ञानी हुई क्या उसने अपनी गृहस्थी का त्याग न करते हुए, इस संसार को समाज के कल्याणार्थ गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए ब्रहमज्ञान प्राप्त करने की सीख दी ?

हाँ ! ऐसी गिनी चुनी महान सन्नारियाँ हुई हैं जिन्होंने ऐसा दैवी कार्य किया। ज्यादातर स्त्रियों ने संन्यास ही पसंद किया या फिर पीड़ा, दुःख अथवा फरियाद में अपने जीवन का अमूल्य समय बिताया।

- गंगा सती गुजरात प्रान्त की रहनेवाली महान नारी है जिन्होंने आध्यात्मिकता की ऐसी ऊँचाई प्राप्त की जिससे वह नारी समाज के लिए उच्च आदर्श बन गयी। उन्होंने अपने जीवन काल में ब्रह्मत्व को प्राप्त किया। ब्रह्म तो न स्त्री है, न पुरूष है ! वह तो सदैव वही शांत, व्यापक, निराकार, अखंड, चैतन्य, अविनाशी, अजर, अमर, सर्वव्याप्त तत्त्व है। जो भावना प्रधान नहीं बल्कि तटस्थ है ! तो स्त्री कैसे फिर अपने आपको बंधन में महसूस कर सकती है। वह तो मुक्त ब्रह्म है। ऐसी ही कुछ गंगा - सती की आंतरिक अवस्था थी। उन्होंने जिस पुरूष को हीन कर्मों से हटाकर सन्मार्ग पर लगाया उसी पुरूष से समाज के नियमानुसार विवाह किया। उन्होंने यह नहीं सोचा कि, ऐसा करने से मेरी आध्यात्मिक स्वतंत्रता छिन जायेगी। क्योंकि वह ब्रह्मत्व में स्थित थीं। आज हमारे समाज को ब्रह्मत्व में जगे हुए ऐसे ही नारियों की आवश्यकता है जो केवल संन्यास को नहीं बल्कि गृहस्थी को लेकर चले।

  इन्हीं महान नारी गंगा-सती ने अपनी बहू पानबाई का जीवन भी आध्यात्मिकता से उज्जवल बनाया है।

- योगवाशिष्ठ - महारामायण में चुड़ाला - शिखरध्वज राजा का संवाद भी यही दर्शाता है।

चुड़ाला ने ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया किन्तु राजा शिखरध्वज ब्रह्मज्ञान से अनभिज्ञ रहे। तब रानी चुड़ाला ने सभी प्रकार की कोशिशें करते हुए राजा शिखरध्वज को ज्ञानप्राप्ति करायी। अगर चुड़ाला ज्ञान प्राप्त करके ऐसे ही अपने कर्तव्यों का परित्याग करके जंगलों में सन्यासिनी बनकर बैठ जाति तो क्या राजा शिखरध्वज ऐसी ज्ञान की पराकाष्ठा तक पहुँच पाते ? नहीं ! तो यह सत्य है कि पुरुष के पीछे एक सन्नारी का वरदहस्त अथवा उसका साथ अति आवश्यक है।

अब दूसरे पहलू को देखते हैं। राजा शिखरध्वज को ज्ञान प्राप्त कराने के बाद रानी चुड़ाला ने सन्यास का मार्ग नहीं बताया बल्कि प्रजा का पालन एवं नेतृत्व करने का मार्ग बताया। अगर दोनों ही गृहस्थ धर्म का एवं प्रजा का त्याग करके निकल पड़ते तो क्या एक आदर्श गृहस्थधर्म स्थापित होता ? नहीं ! और क्या प्रजा को एक न्यायप्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ राजा प्राप्त होता ? नहीं ! तो फिर समाज का हित किसने किया ? जिन्होंने ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके गृहस्थ के साथ समाज को भी स्थान दिया उन्होंने ने ही समाज का सच्चा हित किया।

संन्यास धर्म की अपनी महिमा है वह भी अति आवश्यक धर्म है। किन्तु गृहस्थधर्म में सम्पूर्ण धर्म का पालन है। सारे आश्रमों का मुख्य आधार गृहस्थाश्रम है। सत्यनिष्ठ एवं शास्त्र सम्मत जीवन शैली को जो स्वीकार करते हुए गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं वह शीघ्र ही संन्यास धर्म के अधिकारी भी बन जाते हैं।

हाँ, अब बात यहाँ चल रही है कि, जो स्त्री ब्रह्मज्ञानी है क्या उसे संन्यास धर्म स्वीकारना अथवा अपने पति से विमुख होकर जीवन जीना अनिवार्य है ? नहीं !

क्या वह ज्ञान प्राप्त करके भी अपने पति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर इस समाजरूपी वृक्ष को नहीं सींच सकती ?

क्या स्त्री को यह अनिवार्य है कि वह या तो पति प्रेम में डूबकर अपने ब्रह्मत्व को ही भूल जाये ? अथवा इतनी बंधन मुक्त हो जाये कि किसी के भी बंधन को स्वीकार न करे ? क्या यह नहीं हो सकता कि वह अपने भावना केन्द्र से ऊपर उठकर ब्रह्मत्व में स्थित होकर पुरूष का तटस्थता से साथ दे। अपने कर्तव्यों का निर्वाह करे।

स्त्री भावना केन्द्र में रहने के कारण जब भावुक हो जाती है तब वह अपने जीवन में गलत कदम उठाती है, या तो अपने आपको पुरूष के इतना आधीन कर देती है कि फिर स्वतंत्रता के लिए छटपटाती है। किन्तु क्या किसी भी स्त्री ने अपने अंतर्मन में कभी निहारने की कोशिश की है कि, यह स्वतंत्रता, उच्छृंखलता भी केवल मन की है और जो बंधन मान लिया वह भी मन का है। मन से बंधनमुक्त हो जाये तो पति से बंधनमुक्त होने की आवश्यकता कभी महसूस ही नहीं होगी।

जीवन अगर परमात्मा ने दिया है तो हर स्त्री एवं पुरूष को प्रारब्ध बदलने का अधिकार भी परमात्मा ने दिया है। वह अधिकार है पुरुषार्थ !

पुरुषार्थ के बल पर ही तो अक्का महादेवी ने पति का त्याग किया और अध्यात्म के मार्ग पर अग्रसर हुई ।प्रारब्ध के साथ दुःख, पीड़ा, कष्ट, और भी अन्य यातनाएँ होती हैं किन्तु उसे मिटाने के लिये पुरुषार्थ ही सर्वश्रेष्ठ औषधि है ।हाँ, धरती का कहो अथवा सृष्टि का संतुलन कहो। इसका संबंध हर मानव के पुरुषार्थ से जुड़ा हुआ है।

अब देखिये, अगर सम्पूर्ण स्त्री जाति तटस्थ होकर ब्रह्मत्व में रहकर पुरूष को भी साथ देते हुए चले तो आज जो दुर्दशा समाज की है क्या ऐसी ही रहेगी ? नहीं, कदापि नहीं रहेगी। बहुत ही सुन्दर और आदर्श गृहस्थाश्रम की स्थापना होगी इस विश्व में। फिर किसी नारी को तलाक लेने की या देने की आवश्यकता ही नहीं महसूस होगी और न ही उसे कभी अपने पति के प्रेम पर संदेह होगा।

अगर पति-पत्नी का संबंध सच्चा है, मन, बुद्धि शांत है और जीवन में व्यापकता के साथ ब्रह्मत्व छलकता है तो वह स्त्री पुरूष के साथ पूर्णता का एवं पूर्ण प्रेम का ही अनुभव करेगी।

प्रेम हृदय से किया जाता है, बुद्धि के तर्क-वितर्कों से नहीं। पत्नी अपने मन में पहले से ही यह धारणा बना लेगी कि इसकी इतनी पत्नियाँ अथवा प्रेमिकाएँ हैं तो वह अपने पति से पूर्ण प्रेम प्राप्त नहीं कर पायेगी। क्योंकि प्रेम के फूल हृदय में खिलने से पहले उसने अपने हृदय में 'बहुपत्नी शंका' को स्थान दिया है। प्रेम की जगह शंका ने ले ली तो फिर प्रेम का स्थान कहाँ बचा ? जब कि प्रेम शारीरिक बंधनों से भी परे है। जरूरी नहीं कि बहुपत्नी होने के कारण पति-पत्नी के बीच प्रेम की डोर टूट जाती है। अगर मन और हृदय के संबंध पवित्र हों तो एक पति भी अपनी अनेक पत्नियों को पूर्ण प्रेम कर सकता है। हाँ, स्त्री की यहाँ महत्वपूर्ण भूमिका बनती है कि वह उस प्रेम को कितनी गहराई एवं पूर्णता से स्वीकारती है। और पति भी अगर अपनी पत्नी से पूर्ण प्रेम करता है तो उसे दूसरी प्रेमिका अथवा पत्नी की आवश्यकता ही नही पड़ेगी।

परमात्मा ने स्त्री को अनेक सद्गुणों से अलंकारित किया है। उदारता, दया, शीलता, मृदुता, कोमलता, क्षमाशीलता, प्रेम, करुणा, मातृहृदय अन्य और भी सद्गुणों की खान है स्त्री। फिर यह राग, द्वेष, जलन, इर्ष्या, कभी किसी को हीन दिखाने की चेष्टा तो कभी स्वयं को श्रेष्ठ बताने की लालसा और वह भी पुरुष के ही आगे ऐसा क्यों ?

नारी स्वयं मातृस्वरूपिणी है, ममता का सागर उसके हृदय में सदैव लहराता है, उसे नजरअंदाज करके अपने सद्गुणों को व्यापक करने के बजाय उसे निरर्थक

लालसाओं में एवं आकर्षणों में नष्ट करना मूर्खता ही नहीं बल्कि परमात्मा के दिये हुए सद्गुणों का अनादर करना ही है।

अपनी उर्जा एवं कौशल को सही दिशा में ले जाने से नारी का जीवन 'आदर्श जीवन' बन सकता है। आज यह घटनायें अक्सर देखने एवं सुनने को मिलती हैं कि

'पति शराब पीता है, तो क्या करें ? बोलते हैं तलाक दे दो'।

पति का कहीं ओर चक्कर है तो तलाक दे दो। ऐसा क्यों ? तलाक ही क्यों ? आत्महत्या क्यों ? अथवा हिंसा क्यों ?

अगर स्त्री शीलवती हो, सद्गुणी हो, उसका मनोबल दृढ़ हो, हृदय में प्रेम हो, बुद्धि ज्ञान से प्रकाशित हो, तो क्या ऐसी स्त्री कर्तव्य पालन के बदले, यह सब कदम उठाएगी ? नहीं कदापि नहीं। उदाहरण देखिये माँ आनंदमयी का। उन्होंने तो अपने पति को भी अध्यात्म मार्ग पर चलाया। और उन्हें सांसारिक जीवन में तलाक या पति को छोड़कर कहीं जाना नहीं पड़ा। हाँ आनंदमयी माँ के पति ने उन्हें माँ रूप में स्वीकार किया यह माँ एवं उनके पति के गृहस्थी जीवन का आध्यात्मिक रूपांतरण था। जो बड़ा सुन्दर आदर्श है समाज के लिए।

अब स्त्री अगर पुरुष की भांति व्यवहार करने लगे तो अशोभनीय ही नहीं बल्कि परमात्मा के उपहार का अपमान होगा। और पुरुष स्त्रीवत व्यवहार करे वह भी ईश्वर का उपहास ही होगा।

इसीलिए ईश्वर ने पुरुषत्व और स्त्रीत्व का मेल करके एक गृहस्थीरूपी गाड़ी बनाई जो समाजरूपी कर्तव्यों का वहन कर सके।

नारी को ईश्वर द्वारा यह वर्दान प्राप्त है कि वह अपने सारे सद्गुणों का एवं कलाओं का उपयोग करके अपने गृहस्थीरूपी जीवन के पुष्प को सुवासित करे, विकसित करे।

नारी स्वयं सम्पूर्ण सद्गुणों की खान है। उसे कहीं किसीसे कोई सद्गुण उधार नहीं लेना है। हर सद्गुण एवं कला की स्वामिनी है नारी।

नारी में उदारता जैसा सद्गुण है, सहनशीलता की साक्षात् जीवंत प्रतिमा है नारी। ऐसी ही एक भक्तिमती निर्मला नाम की दिव्य नारी के जीवन की छोटीसी झांकी प्रस्तुत करते हैं। निर्मला सच में ही निर्मल थी। उसका जन्म काशी में हुआ था। वह अपने प्राणाराम राम में अनुरक्त थी। राम ही उसके लक्ष्य, आराध्य थे। विधवा होने के कारण उनके पिता को सदैव निर्मला को देखकर रुदन आता था। उनके नेत्रों से आँसू बहने लगते थे। परंतु निर्मला की साधना बहुत ऊँची थी। वह अपने वैधव्य की अवस्था को खूब समझती थी, परंतु वह साधना की जिस भूमिका पर स्थित थी, उसपर वैधव्य की भीषणता का कोई प्रभाव नहीं था। उन्होंने अपने पिता से कहा - "पिताजी !

आप विद्वान, ज्ञानी और भगवदभक्त होकर रोते क्यों हैं ? शरीर तो मरणधर्मा है ही। जड़ पंचभूतों से बने हुए शरीर में तो मुर्दापन ही है। फिर उसके लिए शोक क्यों करना चाहिये ? यदि शरीर की दृष्टी से देखा जाए तो स्त्री अपने स्वामी की अर्धांगिनी है। उसके आधे अंग में वह है और आधे अंग में उसके स्वामी हैं। इस रूप में स्वामी का बिछोह कभी होता ही नहीं। सती स्त्री का स्वामी तो सदैव अर्धांगरूप में उसके साथ मिला हुआ ही रहता है। अतएव सती स्त्री वस्तुतः कभी विधवा होती ही नहीं। वह विलास के लिए विवाह नहीं करती, वह तो धर्मतः पति को अपना स्वरूप बना लेती है। ऐसी अवस्था में - पृथक शरीर के लिए रोने की क्या आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त सबसे महत्त्व की बात तो यह है कि सारा जगत ही प्रकृति है, पुरुष - स्वामी तो एकमात्र परमात्मा ही है। वह अजर, अमर, नित्य, शाश्वत, सनातन, अखंड, अनंत, अनामय, पूर्ण पुरुषोत्तम है। प्रकृति कभी उनके अंदर सोती है, कभी बाहर उनके साथ खेलती है। प्रकृति उनकी अपनी ही स्वरूप शक्ति है। इस प्रकृति से पुरुष का वियोग कभी होता ही नहीं। पुरुष के बिना प्रकृति का अस्तित्व ही नहीं रहता। अतएव हमारे परमात्मा नित्य हमारे साथ हैं। आप इस बात को जानते हैं, फिर आप रोते क्यों हैं ?" धन्य है ऐसी देवियाँ जो स्वयं भी परमात्मा के प्रेम में मग्न रहती हैं और अपने पिता को भी सांसारिक मोहपाश से मुक्त करने की क्षमता रखती हैं।

आज की नारी को भी भक्तिमती निर्मला के जीवन आदर्श को अपनाने की आवश्यकता है। जिससे नारी का जीवन उन्नत हो सके। वह संसार के साथ - साथ परमार्थ की यात्रा कर सके।

पांडवों की माता कुंती देवी ने अपने जीवनकाल में सभी कर्तव्यों का निर्वाह किया। वह एक आदर्श आर्य-नारी थीं। कहना न होगा कि कुंती माता के आदर्श त्याग का संसार पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। अतएव सभी को उनसे शिक्षा लेनी चाहिये।

कुंती देवी का जीवन आरंभ से अन्त तक बड़ा ही त्यागपूर्ण, तपस्यामय और अनासक्त था। पांडवों के वनवास एवं अज्ञातवास के समय ये उनसे अलग हस्तिनापुर में ही रहीं और वहीँ से इन्होंने अपने पुत्रों के लिए अपने भतीजे भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा क्षत्रियधर्म पर डटे रहने का संदेश भेजा। इन्होंने विदुला और संजय का दृष्टांत देकर बड़े ही मार्मिक शब्दों में उन्हें कहला भेजा कि "पुत्रों ! जिस कार्य के लिए क्षत्राणी पुत्र उत्पन्न करती है, उस कार्य के करने का समय आ गया है। इस समय तुमलोग मेरे दूध को न लजाना।" महाभारत युद्ध के समय भी ये वहीं रहीं और युद्ध - समाप्ति के बाद जब धर्मराज युधिष्ठिर सम्राट के पद पर अभिषिक्त हुए और इन्हें राजमाता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उस समय इन्होंने पुत्र वियोग से दुखी अपने

जेठ - जेठानी की सेवा का भार अपने उपर ले लिया और द्वेष एवं अभिमान से रहित होकर उनकी सेवा में अपना समय बिताने लगीं। यहाँ तक कि जब वे दोनों युधिष्ठिर से अनुमति लेकर वन जाने लगे, तब कुंती माता भी चुपचाप उनके संग हो ली और युधिष्ठिर आदि के समझाने पर भी अपने दृढ़ निश्चय से विचलित नहीं हुई। जीवनभर दुःख और क्लेश भोगने के बाद जब सुख के दिन आए, उस समय भी सांसारिक सुख-भोग को ठुकराकर स्वेच्छा से त्याग, तपस्या एवं सेवामय जीवन स्वीकार करना, यह कुन्ती देवी जैसे पवित्र आत्मा का ही काम था। जिन जेठ-जेठानी ने उन्हें तथा उनके पुत्रों एवं पुत्रवधुओं को कष्ट, अपमान एवं अत्याचार के अतिरिक्त कुछ नहीं दिया, उन जेठ-जेठानी के लिए इतना त्याग संसार में कहाँ देखने को मिलता है। आज की नारी जाति को समस्त माताओं एवं बहनों को कुंती देवी के इस अनुपम त्याग से शिक्षा लेनी चाहिये।

अंत समय जेठ-जेठानी की सेवा में रहकर उन्होंने उन्हीं के साथ दावाग्नि में जलकर योगियों की भांति शरीर छोड़ दिया। कुंती देवी जैसी आदर्श महिलाएं संसार के इतिहास में बहुत कम मिलेंगी।

माता कुंती ने कभी सांसरिक सुख नहीं भोगा। जबसे वह विवाहित होकर आई, उन्हें विपत्तियों का ही सामना करना पड़ा। पति रोगी थे, उनके साथ जंगलों में भटकती रहीं। वहीँ पुत्र पैदा हुए, उनकी देख-रेख की, थोड़े दिन हस्तिनापुर में पुत्रों के साथ रहीं, वह भी दूसरों के आश्रित बनकर। फिर लाक्षागृह से किसी प्रकार अपने पुत्रों को लेकर भागी और भिक्षा के अन्न पर जीवन बिताती रहीं। थोड़े दिन राज्यसुख भोगने का समय आया कि धर्मराज युधिष्ठिर जुए में कपट से सर्वस्व हारकर वनवासी बने। विदुर के घर में रहकर कुंतीजी जैसे-तैसे जीवन बिताती रहीं । युद्ध हुआ। परिवारवालों का संहार हुआ। पांडवों की विजय हुई। पर वे पांडवों के साथ राज्यभोग में सम्मिलित नहीं हुई। इस प्रकार उनका जीवन सदा विपत्ति में ही कटा। इस विपत्ति में भी उन्हें सुख था। वे इस विपत्ति को भगवान से चाहती थी और हृदय से इसे विपत्ति मानती भी नहीं थी -

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपद विस्मरणम विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः॥

"**विपत्ति यथार्थ में विपत्ति नहीं है, संपत्ति भी संपत्ति नहीं। भगवान का विस्मरण होना ही विपत्ति है और उनका स्मरण बना रहे यही सबसे बड़ी संपत्ति है।**" सो उन्हें भगवान का विस्मरण कभी हुआ नहीं, अतः वे वस्तुतः सदा सुख में ही रहीं। ऐसी सन्नारी कुंती देवी के आदर्श जीवन को अपना आदर्श बनाना चाहिये।

आनंदमयी भारती

हे नारी !तू है महान !
तुझसे है इस देश की शान !!
CONTACT US
9033861741, 9227729933